नीति के मानवतावादी सिद्धान्त और जैन आचार-दर्शन

'मानवतावाद' सामान्य रूप से स्वाभाविक इच्छाओं का सर्वथा दमन उचित नहीं मानता, वरन् उनका संयमन आवश्यक मानता है। वह संयम का पक्षधर है, दमन का नहीं। उसके अनुसार सच्चा नैतिक जीवन इच्छाओं के दमन में नहीं, अपितु उसके नियमन या नियन्त्रण में है।

मानवतावाद में नैतिकता का प्रत्यय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, यही कारण है कि मानवतावाद को आचारशास्त्रीय धर्म कहा जाता है। मानवतावादी सिद्धान्त नैतिकता को मानव की सांस्कृतिक चेतना के विकास में देखते हैं। सांस्कृतिक चेतना का विकास ही नैतिकता का आधार है। सांस्कृतिक विकास एवं नैतिक जीवन मानवीय गुणों के विकास में हैं। मानवतावादी चिन्तन में मनुष्य ही नैतिक मूल्यों का मापदण्ड है और मानवीय गुणों का विकास ही नैतिकता है। मानवतावादी विचारकों की एक लम्बी परम्परा है। प्लेटो और अरस्तू से लेकर लेमान्ट, जाकमारिता तथा समकालीन विचारकों में रसल, वारनर फिटे, सी०बी०गर्नेट और इस्राइल लेविन प्रभृति विचारक इस परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि उपरोक्त सभी विचारक मानवीय गुणों के विकास के संदर्भ में ही नैतिकता के प्रत्यय को देखते हैं फिर भी प्राथमिक मानवीय गुण क्या है, इस सम्बन्ध में उनमें मत-भेद है। समकालीन मानवतावादी विचारकों में इसी प्रश्न को लेकर प्रमुख रूप से तीन वर्ग हैं, जिन्हें क्रमशः आत्मचेतनतावाद, विवेकवाद और आत्मसंयमवाद कहा जा सकता है। इन तीनों ही मान्यताओं का जैन दर्शन के साथ निकट सम्बन्ध देखा जा सकता है, लेकिन इसके पहले कि हम इनके साथ जैन दर्शन की तुलना करें, मानवतावाद की कुछ सामान्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

सर्वप्रथम मानतावादी विचार-परम्परा सहानुभूति के प्रत्यय को ही नैतिकता का आधार बनाती है। मानवतावाद के अनुसार मनुष्य का परम प्राप्तव्य इसी जगत् में केन्द्रित हैं और इसीलिए वह अपने नैतिक दर्शन को किसी पारलौकिक सुख-कामना पर आधृत नहीं करता। उसके अनुसार नैतिक होने के लिए किसी पारलौकिक आदर्श या साध्य के प्रति निष्ठा की आवश्यकता नहीं है, वरन् मनुष्य में निहित सहानुभूति का तत्त्व ही उसे नैतिकता के प्रति आस्थावान् बनाये रखने के लिए पर्याप्त है। वह नैतिकता को प्रलोभन और भय के आधार पर खड़ा नहीं कर, मानव में निहित सहानुभूति के तत्त्व पर खड़ा करता है। उसके अनुसार नैतिक होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम किसी पारलौकिक सत्ता (ईश्वर) अथवा कर्म के नियम जैसे किसी सिद्धान्त पर आस्था रखें। उसके अनुसार मानवीय प्रकृति में निहित सहानुभूति का तत्त्व ही नैतिक होने के लिए पर्याप्त है।

यदि हम इस प्रश्न पर जैन दर्शन का दृष्टिकोण जानना चाहें तो जैन दर्शन भी प्राणी में निहित सहानुभूति के तत्त्व को स्वीकार करता है (परस्परोपग्रहो जीवानाम् —तत्त्वार्थ,५/२१)[१] तथापि वह कर्म-नियम पर भी अपनी आस्था प्रकट करके चलता है। इस सहानुभूति के तत्त्व के साथ-साथ कर्म-सिद्धान्त को भी नैतिकता का आधार बनाता है।

मानवतावाद सांसारिक हित-साधन पर बल देता है और पारलौकिक सुख-कामना को व्यर्थ मानता है, यद्यपि वह मनुष्य को स्थूल सुखों तक सीमित नहीं रखता है, किन्तु कला, साहित्य, मैत्री और सामाजिक सम्पर्क के सूक्ष्म सुखों को भी स्थान देता है। लेमान्ट परम्परावादी और मानतावादी आचार दर्शन में निषेधात्मक और विधानात्मक दृष्टि से भेद स्पष्ट करता है। उसके अनुसार परम्परावादी नैतिक दर्शन में वर्तमान के प्रति उदासीनता और परलोक में सुख प्राप्त करने की जो इच्छा होती है, वह निषेधात्मक है। इसके विपरीत मानवतावाद इस जीवन के प्रति आस्था रखता है और उसे सुखी बनाना चाहता है, यह विधायक है।

तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करते समय हम यह पाते हैं कि यद्यपि जैन दर्शन पारलौकिकता के प्रत्यय को स्वीकार करता है और भावी जीवन के अस्तित्व में आस्था भी रखता है, लेकिन इस आधार पर उसे निषेधात्मक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि वह वर्तमान जीवन के प्रति उदासीनता नहीं रखता है। जैन दार्शनिक स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि नैतिक साधना का पारलौकिक सुख की कामना से कोई सम्बन्ध नहीं है, वरन् पारलौकिक सुख-कामना के आधार पर किया गया नैतिक कर्म दूषित है। वे नैतिक-साधना को न ऐहिक सुखों के लिए और न पारलौकिक सुखों के लिए मानते हैं वरन् उनके अनुसार तो नैतिक साधना का एकमात्र साध्य आत्म-विकास या आत्मपूर्णता है। बुद्ध ने भी स्पष्ट रूप से यह बताया है कि नैतिक जीवन का साध्य पारलौकिक सुख की कामना नहीं है। गीता में भी फलाकांक्षा के रूप में पारलौकिक सुख की कामना को अनुचित ही कहा गया है।

जैन विचारणा नैतिक जीवन के लिए अपनी दृष्टि वर्तमान पर ही केन्द्रित करती है और कहती है कि —

गत वस्तु सोचे नहीं आगत वांछा नाय।
वर्तमान में वर्ते सही सो ज्ञानी जग माय।

— आलोचना पाठ

जो भूत के सम्बन्ध में कोई शोक नहीं करता और भविष्य के सम्बन्ध में जिसकी कोई अपेक्षाएँ नहीं हैं, जो मात्र वर्तमान में ही अपने जीवन को जीता है, वही सच्चा ज्ञानी है। विशुद्ध वर्तमान में जीवन जीना जैन परम्परा का नैतिक आदर्श रहा है। अत: वह वर्तमान के प्रति उदासीन नहीं है, फिर भी इस अर्थ में वह मानवतावादी विचारकों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ भी है और वह परलोक के प्रत्यय से इन्कार नहीं करती। भगवान् बुद्ध ने भी अजातशत्रु को यही बताया था कि मेरे धर्म की साधना का केन्द्र पारलौकिक जीवन नहीं, वरन् यही जीवन है।

मानवतावाद सामान्य रूप से स्वाभाविक इच्छाओं का सर्वथा दमन उचित नहीं मानता वरन् उसका संयमन आवश्यक मानता है। वह संयम का समर्थक है, दमन का नहीं। उसके अनुसार सच्चा नैतिक जीवन इच्छाओं के दमन में नहीं वरन् उनके संयमन में है।

तुलनात्मक दृष्टि से यदि हम इस पर विचार करें तो यह पाते हैं कि जैन, बौद्ध और गीता के आचार-दर्शन भी दमन के प्रत्यय को स्वीकार नहीं करते हैं। उनमें भी इच्छाओं का दमन अनुचित माना गया है। जैन दर्शन में क्षायिक एवं औपशमिक साधना की दो श्रेणियाँ मानी गयी हैं। इनमें भी केवल क्षायिक श्रेणी का साधक ही आत्म-पूर्णता को प्राप्त कर सकता है; उपशम श्रेणी का साधक तो साधना की ऊँचाई पर पहुँचकर भी पतित हो जाता है। इस प्रकार वह भी दमन को अस्वीकार करता है और केवल संयम को स्थान देता है। इस अर्थ में वह मानववादी विचारणा के साथ है।

मानवतावाद कर्म के औचित्य और अनौचित्य का निर्धारण समाज पर उसके परिणाम के आधार पर करता है। लेमान्ट के अनुसार कर्म-प्रेरक और कर्म में विशेष अन्तर नहीं है। कोई भी क्रिया बिना प्रेरणा के नहीं होती है और जहाँ प्रेरणा होती है, वहाँ कर्म भी होता है। तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार करते समय हम यह पाते हैं कि बौद्ध दर्शन और गीता स्पष्ट रूप से कर्म के औचित्य और अनौचित्य का निर्धारण कर्मप्रेरक के आधार पर करते हैं, कर्म-परिणाम के आधार पर नहीं और इस आधार पर वे मानवतावाद से कोई साम्य नहीं रखते। जहाँ तक जैन दर्शन का प्रश्न है, वह व्यवहार दृष्टि से कर्म-परिणाम को और निश्चय दृष्टि से कर्म-प्रेरक को औचित्य अनौचित्य के निर्णय का आधार बनाता है। इस प्रकार उसकी मानवतावाद से इस सम्बन्ध में आंशिक समानता है।

मानवतावाद मनुष्य को ही समग्र मूल्यों का मानदण्ड स्वीकार करता है। इस प्रकार वह मानवीय जीवन को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करता है। यदि हम तुलनात्मक दृष्टि से इस प्रश्न को देखें तो हमें यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करना होगा कि भारतीय परम्परा भी मानवीय जीवन के महत्त्व को स्वीकार करती है। जैन आगमों में मानव जीवन को दुर्लभ बताया गया है। आचार्य अमितगति ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जीवन में मनुष्य का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। 'धम्मपद' में भगवान् बुद्ध ने भी मनुष्य जन्म को दुर्लभ बताया है। 'महाभारत' में व्यास ने भी यही कहा है कि यदि कोई रहस्यमय बात है तो वह यह है कि मनुष्य से श्रेष्ठ और कोई नहीं हैं।[२] तुलसीदासजी ने इसी तथ्य को यह कहकर प्रकट किया है कि— **'बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सब ग्रन्थहिं गावा'।** इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय चिन्तन में भी मनुष्य जीवन के सर्वोच्च मूल्य को स्वीकार किया गया है। यहाँ हम पाते हैं कि मानवतावादी विचार-परम्परा की जैन दर्शन से तथा सामान्य रूप से भारतीय दर्शन से निकटता है। समकालीन मानवतावादी विचारणा में प्राथमिक मानवीय गुण के प्रश्न को लेकर प्रमुख रूप से तीन विचारधाराएँ प्रचलित हैं। जैन आचार-दर्शन के साथ इनका तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए हम इन तीनों पर अलग-अलग विचार करेंगे।

आत्मचेतनावादी दृष्टिकोण और जैनदर्शन

मानवतावादी विचारकों में आत्मचेतनता या आत्मजागृति को ही नैतिकता का आधार और प्राथमिक मानवीय गुण मानने वाले विचारकों में वारनरफिटे प्रमुख हैं। वारनरफिटे नैतिकता को आत्मचेतनता का सहगामी मानते हैं। उनकी दृष्टि में नैतिकता का परिभाषक उस समग्र सामाजिक प्रक्रिया में नहीं है, जिसमें मनुष्य जीवन जीता है, वरन् आत्मचेतना की उस मानवीय प्रक्रिया में है, जो व्यक्ति के जीवन में रही हुई है। वस्तुतः नैतिकता आत्मचेतन जीवन जीने में है। उनका कथन है कि जीवन के समग्र मूल्य जीवन की चेतना में निहित हैं। यही एक ऐसा दृष्टिकोण है जो जीवन के किन्ही भी मूल्यों की अवधारणा कर सकता है। चेतना के नियंत्रण में जो जीवन है, वही सच्चा जीवन है। नैतिक होने का अर्थ यह जानना है कि हम क्या कर रहे हैं? जागृत चेतना नैतिकता है और प्रसुप्त चेतना अनैतिकता है। शुभ एवं उचित कार्य वह नहीं, जिसमें आत्मविस्मृति होती है। वरन् वह है जिसमें आत्मचेतना होती है।[३]

नैतिकता का यह आत्मचेतनतावादी दृष्टिकोण जैन आचार-दर्शन के अति निकट है। वारनरफिटे की नैतिक दर्शन की यह मान्यता अति स्पष्ट रूप में जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों में उपलब्ध है। फिटे जिसे आत्मचेतना कहते हैं, उसे जैन दर्शन में अप्रमत्तता या आत्मजागृति कहा गया है। जैन दर्शन के अनुसार प्रमाद आत्मविस्मृति की अवस्था है। जैन दर्शन में प्रमाद को अनैतिकता का प्रमुख कारण माना गया है। जो भी क्रियाएँ प्रमाद के कारण होती हैं या प्रमाद की अवस्था में की जाती हैं वे सभी अनैतिक मानी गयी हैं। 'आचारांग' में महावीर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जो प्रसुप्त चेतना वाला है वह अमुनि (अनैतिक) है और जो जाग्रत चेतना वाला है वह मुनि (नैतिक) है।[४] 'सूत्रकृतांग' में प्रमाद को कर्म और अप्रमाद को अकर्म कहकर यही बताया गया है कि जो क्रियाएँ आत्मविस्मृति लाती हैं, वे बन्धनकारक हैं और इसलिए अनैतिक भी हैं।[५] इसके विपरीत हो क्रियाएँ अप्रमत्त चेतना की अवस्थाा में सम्पन्न होती है, वे अबन्धकारक होती हैं और इस रूप में पूर्णतया विशुद्ध और नैतिक होती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वारनरफिटे का आत्मचेतनतावादी दृष्टिकोण जैन दर्शन के अति निकट है।

न केवल जैनदर्शन में वरन् बौद्धदर्शन में भी आत्मचेतनता को नैतिकता का प्रमुख आधार माना गया है। 'धम्मपद' में बुद्ध स्पष्ट रूप से कहते हैं कि अप्रमाद अमरता का मार्ग है और प्रमाद मृत्यु का।[६] बौद्धदर्शन में अष्टांग साधना-मार्ग में सम्यक् स्मृति भी इसी बात को स्पष्ट करती है कि आत्मस्मृति या जागृत चेतना ही नैतिकता का आधार है, जबकि आत्मविस्मृति या प्रसुप्त चेतना अनैतिकता का आधार है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्ध नन्द को उपदेश देते हुए कहते हैं कि जिसके पास स्मृति नहीं है उसे आर्यसत्य कहाँ से प्राप्त होगा। इसलिए चलते हुए 'चल रहा हूँ', खड़े होते हुए 'खड़ा हो रहा हूँ' एवं इसी प्रकार दूसरे कार्य करते समय अपनी स्मृति बनाये रखो।[७] इस प्रकार हम देखते हैं कि बुद्ध भी आत्मचेतनता को नैतिक जीवन का केन्द्र स्वीकार करते हैं।

गीता में भी सम्मोह से, स्मृति-विनाश और स्मृतिविन्यास से बुद्धि-नाश कहकर यही बताया गया है कि आत्मचेतना नैतिक जीवन के लिए एक आवश्यक तथ्य है।[८]

विवेकवाद[९] और जैनदर्शन

मानवतावादी विचारकों में दूसरा वर्ग विवेक को प्राथमिक मानवीय गुण स्वीकार करता है। सी०बी०गर्नेट और इस्राइल लेविन के अनुसार नैतिकता विवेकपूर्ण जीवन जीने में है। गर्नेट के अनुसार विवेक-संगति नहीं वरन् जीवन में कौशल या चतुराई का होना है। बौद्धिकता या तर्क उसका एक अंग हो सकता है समग्र नहीं। गर्नेट, अपनी पुस्तक "विज्डम आफ कन्डक्ट" में प्रज्ञा को ही सर्वोच्च सद्‌गुण मानते हैं और प्रज्ञा या विवेक से निर्देशित जीवन जीने में नैतिकता के सार तत्त्व की अभिव्यक्ति मानते हैं। उनके अनुसार नैतिकता की सम्यक् एवं सार्थक व्याख्या शुभ-उचित कर्तव्य आदि नैतिक प्रत्ययों की व्याख्या में नहीं वरन् आचरण में विवेक के सामान्य प्रत्यय में है। आचरण में विवेक एक ऐसा तत्त्व है जो नैतिक परिस्थिति के अस्तित्ववान पक्ष अर्थात् चरित्र, प्रेरणाएँ, आदत, रागात्मकता, विभेदीकरण, मूल्य-निर्धारण और साध्य को दृष्टिगत रखता है। इन सभी पक्षों को पूर्णतया दृष्टि में रखे बिना जीवन में विवेक पूर्ण आचरण की आशा ही नहीं की जा सकती। आचरण में विवेक एक ऐसी लोचपूर्ण दृष्टि है जो परिस्थितियों के सभी पक्षों की सम्यक् विचारणा के साथ खोज करती हुई सुयोग्य चुनावों को करती है। लेविन ने आचरण में विवेक का तात्पर्य एक समायोजनात्मक क्षमता से माना है। उसके अनुसार नैतिक होने का अर्थ मानव की मूलभूत क्षमताओं की अभिव्यक्ति है।

गर्नेट और लेविन के इन दृष्टिकोणों की तुलना जैन आचार-दर्शन के साथ करने पर हम पाते हैं कि आचरण में विवेक का प्रत्यय जैन विचारणा एवं अन्य सभी भारतीय विचारणाओं में भी स्वीकृत रहा है। जैन विचारकों ने सम्यग्ज्ञान के रूप में जो साधना-मार्ग बताया है वह केवल तार्किक ज्ञान नहीं है वरन् एक विवेकपूर्ण दृष्टि है। जैन परम्परा में आचरण में विवेक के लिए या विवेकपूर्ण आचरण के लिए 'यतना' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'दशवैकालिक सूत्र' में स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि जो जीवन की विभिन्न क्रियाओं को विवेक या सावधानीपूर्वक सम्पादित करता है वह अनैतिक आचरण नहीं करता है।[१०] बौद्ध परम्परा में भी यही दृष्टिकोण स्वीकृत रहा है। बुद्ध ने भी 'अङ्गुत्तरनिकाय' में महावीर के समान ही इसे प्रतिपादित किया है। गीता में कर्म-कौशल को ही योग कहा गया है जो कि विवेक-दृष्टि का सूचक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समालोच्य आचार-दर्शनों में भी आचरण में विवेक का प्रत्यय स्वीकृत रहा है।

गर्नेट ने आचरण में विवेक के लिए उन समग्र परिस्थितियों एवं सभी पक्षों का विचार आवश्यक माना है जिनमें कर्म किया जाना है। वह कर्म के सभी पक्षों पर विचार आवश्यक मानता है, जिसे हम जैन दर्शन के अनेकान्तवाद के सिद्धान्त के द्वारा सम्यक् प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं। जैन दर्शन की अनेकान्तवादी धारणा भी यही निर्देश देती है कि विचार के क्षेत्र में हमें एकांगी दृष्टिकोण रखकर निर्णय नहीं लेना चाहिए वरन् एक सर्वांगीण दृष्टिकोण रखना चाहिए। इस प्रकार गर्नेट का सभी पक्षों के विचार का प्रत्यय जैन दर्शन के अनेकान्तवादी सर्वांगीण दृष्टिकोण से अधिक दूर नहीं है।

आत्मसंयम का सिद्धान्त और जैनदर्शन

मानवतावादी नैतिक दर्शन के तीसरे वर्ग का प्रतिनिधित्व इरविंग बबिट करते हैं।[११] बबिट के अनुसार मानवता एवं नैतिक जीवन का सार न तो आत्मचेतन जीवन जीने में है और न विवेकपूर्ण जीवन में, वरन् वह संयमपूर्ण जीवन या आत्म-अनुशासन में है। बबिट आधुनिक युग के संकट का कारण यह बताते हैं कि हमने परम्परागत कठोर वैराग्यवादी धारणाओं को तोड़ दिया और उनके स्थान पर ठीक रूप से आदिम भोगवाद को ही प्रस्तुत किया है। वर्तमान युग के विचारकों ने परम्परागत धारणाओं के प्रतिवाद में एक ऐसी गलत दिशा का चयन किया है, जिसमें मानवीय हितों को चोट पहुँची है। उनका कथन है कि मनुष्य में निहित वासना रूपी पाप को अस्वीकृत करने का अर्थ उस बुराई को ही दृष्टि से ओझल कर देना है, जिसके कारण मानवीय सभ्यता का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। मानवीय वासनाएँ पाप हैं, अनैतिक हैं, इस बात को भूलकर हम मानवीय सभ्यता का ही विनाश करेंगे, जबकि उसके प्रति जागृत रहकर हम मानवीय सभ्यता का विकास कर सकेंगे। बबिट बहुत ही ओजपूर्ण शब्दों में कहते हैं कि हम में जैविक प्रवेग तो बहुत हैं, आवश्यकता है जैविक नियंत्रण की। हमें अपनी वासनाओं पर नियंत्रण करना चाहिए। केवल सहानुभूति के नाम पर सामाजिक एकता नहीं आ सकती। मनुष्यों को सहानुभूति के सामान्य तत्त्व के आधार पर नहीं वरन् अनुशासन के सामान्य तत्त्व के आधार पर ही एक दूसरे के निकट लाया जा सकता है। सहानुभूति के विस्तार का नैतिक दर्शन केवल भावनात्मक मानवतावाद की स्थापना करता है, जबकि आवश्यकता ऐसे ठोस मानवतावाद की है जो अनुशासन पर बनता है।

तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए हम यह पाते हैं कि सभी समालोच्य आचार-दर्शन संयम के प्रत्यय को स्वीकार करते हैं। जैन दर्शन नैतिक पूर्णता के लिए संयम का आवश्यक मानता है। उसके त्रिविध साधना-पथ में सम्यक् आचारण को भी वही मूल्य है जो विवेक और भावना का है। 'दशवैकालिकसूत्र' में धर्म को अहिंसा, संयम और तपोमय बताया है।[१३] वस्तुतः अहिंसा और तप भी संयम के पोषक ही हैं और इस अर्थ में संयम ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जैन भिक्षु-जीवन और गृहस्थ-जीवन में संयम या अनुशासन को सर्वत्र ही महत्त्व दिया गया है। महावीर के सम्पूर्ण उपदेश का सार असंयम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से निवृत्ति और संयम में प्रवृति है।[१३] इस प्रकार हम देखते हैं कि बबिट का यह दृष्टिकोण जैन दर्शन के अति निकट है। उसका यह कहना कि वर्तमान युग में संकट का कारण संयमात्मक मूल्यों का ह्रास है, जैन दर्शन को स्वीकार है। वस्तुत: आत्मसंयम और अनुशासन आज के युग की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, जिसे इन्कार नहीं किया जा सकता।

न केवल जैन दर्शन में वरन् बौद्ध और वैदिक दर्शन में भी संयम और अनुशासन के प्रत्यय को आवश्यक माना गया है। भारतीय नैतिक चिन्तन में संयम का प्रत्यय एक ऐसा प्रत्यय है जो सभी आचार-दर्शनों में और सभी कालों में स्वीकृत रहा है। संयमात्मक जीवन भारतीय संस्कृति की विशेषता रहा है। बबिट का यह विचार भारतीय चिन्तन के लिए कोई नया नहीं है।

समकालीन मानवतावादी विचारकों के उपरोक्त तीनों सिद्धान्त यद्यपि भारतीय चिन्तन में स्वीकृत रहे हैं तथापि भारतीय विचारकों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने इन तीनों को समवेत रूप में स्वीकार किया है। जैन दर्शन में सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चारित्र के रूप में, बौद्ध दर्शन में शील, समाधि और प्रज्ञा के रूप में तथा गीता में श्रद्धा, ज्ञान और कर्म के रूप में प्रकारान्तर से इन्हें स्वीकार किया गया है। फिर भी गीता की श्रद्धा को आत्मचेतनता नहीं कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन के इस त्रिविध साधना-पथ में समाधि आत्मचेतनता का, प्रज्ञा विवेक का और शील संयम का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार जैन दर्शन में सम्यग्दर्शन आत्मचेतनता का, सम्यग्ज्ञान विवेक का और सम्यक्चरित्र संयम का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सन्दर्भ :

१. देखिये —
   (अ) समकालीन दार्शनिक चिन्तन, डॉ० हृदयनारायण मिश्र, पृ० ३००-३२५।
   (ब) कन्टेम्पररि एथिकल थ्योरीज़, पृ० १७७-१८८।
२. (अ) माणुस्सं सुदुल्लहं। — उत्तराध्ययनसूत्र।
   (ब) भवेषु मानुष्यभव: प्रधानम् । — अमितगति।
   (स) किच्चे मणुस्स पटिलाभो। — धम्मपद, १८२।
   (द) गुह्यं तदिदं ब्रवीमि।
   न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।
   — महाभारत, शान्तिपर्व, २९९/२०।
४. आचाराङ्ग, ११/३।
५. सूत्रकृताङ्ग, १/८/३।
६. धम्मपद, २/१।
७. सौन्दरनन्द, १४/४३-४५।
८. गीता, २/६३।
९. देखिये —
   (अ) कण्टेम्पररि एथिकल थ्योरीज़, पृ० १८१-१८४।
   (ब) विज़डम ऑफ कण्डक्ट — सी०बी०गर्नेट।
१०. दशवैकालिक, ४/८।
११. बबिट के दृष्टिकोण के लिए देखिये —
   (अ) कण्टेम्पररि एथिकल थ्योरीज़, पृ० १८५-१८६।
   (ब) दि ब्रेकडाउन ऑफ इण्टरनेशनलिज्म।
   — प्रकाशित 'दि नेशन' खण्ड स (८) १९१५।
१२. दशवैकालिक, १/१।
१३. उत्तराध्ययन, ३१/२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org